

कोयंबटूर जिला केंद्रीय सहकारी बैंक का प्रबंधन

बनाम

सचिव, कोयंबटूर जिला केंद्रीय सहकारी बैंक कर्मचारी संघ एवं अन्य

अप्रैल 23, 2007

[सी.के. ठक्कर और तरुण चटर्जी, न्यायमूर्तिगण]

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947: धारा 10/भारत का संविधान, 1950; अनुच्छेद 14, 142, 226, 227: जन उपयोगी सेवा/बैंक में अवैध हड़ताल—प्रबंधन और संघ के बीच समझौता—कुछ कर्मचारियों ने न केवल हड़ताल जारी रखी बल्कि अन्य कर्मचारियों को कार्य पर लौटने से भी रोका—अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और उन्हें निलंबित कर दिया गया—जांच—दोषी कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही में शामिल नहीं हुए—वे आरोपित अपराधों के दोषी पाए गए—सक्षम प्राधिकारी द्वारा संचयी प्रभाव के साथ 1-4 वर्ष के लिए वेतन वृद्धि रोकने और निलंबन की अवधि के दौरान वेतन का भुगतान न करने का दंड आदेश पारित किया गया—औद्योगिक विवाद—संदर्भ —श्रम न्यायालय द्वारा यह धारित करते हुए खारिज कर दिया गया कि दोषी कर्मचारियों के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हो चुके हैं—चुनौती—उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा वेतन वृद्धि रोकने के दंड आदेश को अपास्त करके आंशिक रूप से याचिका स्वीकार की गई—उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द करते हुए और रोकी गई वेतन वृद्धि के बकाये पर ब्याज के भुगतान का निर्देश देकर अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई—अपील पर, अभिनिर्धारित: श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट पूरी तरह से न्यायसंगत, उचित था और उसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी—उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226/227 के तहत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए

श्रम न्यायालय द्वारा पारित ऐसे सुविचारित पंचाट में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश और खंडपीठ, दोनों ही दोषी कर्मचारियों को लाभ देने के लिए न्यायसंगत नहीं थे—हालांकि, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उन्हें दिए गए सीमित लाभ में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

अनुच्छेद 14—भेदभाव—अवैध हड़ताल—औद्योगिक विवाद—श्रम न्यायालय द्वारा केवल कुछ कर्मचारियों को उनके खिलाफ वेतन वृद्धि रोकने का निर्देश देकर दंडित करने वाला पंचाट पारित करना—क्या पंचाट मनमाना और अतार्किक है—अभिनिर्धारित: नहीं, संबंधित कर्मचारी अन्य कर्मचारियों से अलग एक स्वतंत्र वर्ग का गठन करते हैं क्योंकि उन्होंने प्रबंधन और संघ के बीच हुए समझौते की शर्तों के अनुसार अपना कार्य फिर से शुरू नहीं की थी, जबकि अन्य ने अपना कार्य फिर से शुरू कर दी थी—अतः वे अनुच्छेद 14 के तहत संरक्षण के आधार पर समान लाभ का दावा नहीं कर सकते।

सिद्धांत :

आनुशासिकता का सिद्धांत—की प्रयोज्यता—चर्चा की गई।

एक सहकारी बैंक-अपीलकर्ता के कर्मचारी संघ ने 'हड़ताल का नोटिस' दिया, जिसमें इस आधार पर हड़ताल पर जाने का प्रस्ताव था कि प्रबंधन द्वारा कुछ कर्मचारियों को निलंबित कर दिया गया था और उनका वेतन रोक दिया गया था। हड़ताल के इस आह्वान को अवैध घोषित कर दिया गया क्योंकि नोटिस औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के अनुरूप नहीं था। संघ को तदनुसार सूचित कर दिया गया था। इसके बावजूद, कर्मचारियों ने 17 अप्रैल, 1972 से हड़ताल शुरू कर दी। 19 अप्रैल, 1972 को प्रबंधन द्वारा संघ को एक नोटिस जारी कर सूचित किया गया कि कर्मचारी 22 अप्रैल, 1972 तक बिना शर्त माफी मांगकर काम पर लौट आएं। बाद में प्रबंधन और संघ के बीच एक समझौता हो गया; परिणामस्वरूप, 134 कर्मचारियों ने

'हड़ताल का आह्वान' वापस ले लिया और काम पर लौट आए। हालांकि, 53 कर्मचारियों ने अपनी अवैध हड़ताल और दुराचरण के कृत्यों को जारी रखा। दोषी कर्मचारियों के इन अवैध कृत्यों ने बैंक के काम को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया। अपीलकर्ता-बैंक का आरोप था कि इन कर्मचारियों ने न केवल काम शुरू नहीं किया और अवैध तथा गैर-कानूनी हड़ताल जारी रखी, बल्कि उन्होंने अन्य कर्मचारियों को भी कार्य पर लौटने से रोका और उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। इसलिए, ऐसे कर्मचारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, उन्हें निलंबित कर दिया गया और जांच बिठाई गई। नोटिस के बावजूद, कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही में शामिल नहीं हुए और अनुपस्थित रहे। इसलिए, प्रबंधन उनके खिलाफ *एकपक्षीय* अनुशासनात्मक जांच आगे बढ़ाने के लिए विवश हुआ। उन्हें आरोपों का दोषी पाया गया और उनके खिलाफ (i) संचयी प्रभाव के साथ 1-4 वर्षों के लिए वेतन वृद्धि रोकने; और (ii) निलंबन की अवधि के दौरान वेतन का भुगतान न करने का दंड आदेश पारित किया गया। कर्मचारी काम पर लौट आए लेकिन उन्होंने अपील दायर करना चुना, जिसे कार्यकारी समिति ने खारिज कर दिया। असंतुष्ट होकर, कर्मचारियों ने एक औद्योगिक विवाद खड़ा किया जिसे सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10 के तहत श्रम न्यायालय को संदर्भित किया गया। संदर्भ को खारिज करते हुए, श्रम न्यायालय ने माना कि कर्मचारियों के खिलाफ लगाए गए सभी चार आरोप साबित हो गए हैं और जांच कानूनी, वैध तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप थी। साक्ष्यों से यह स्थापित हुआ कि कर्मचारियों द्वारा धमकी दी गई थी। व्यथित होकर संघ/एसोसिएशन ने श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट को उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करके चुनौती दी।

उच्च न्यायालय द्वारा याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया, जिसमें निलंबन की अवधि के वेतन को रोकने की पुष्टि की गई, लेकिन वेतन वृद्धि रोकने के दंड आदेश को

अपास्त कर दिया गया। प्रबंधन को निर्देश दिया गया कि वह कर्मचारियों को वेतन वृद्धि रोकने के संबंध में बकाया राशि का भुगतान "12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज" के साथ करे। प्रबंधन ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अंतः-न्यायालय अपील दायर की। खंडपीठ ने राय व्यक्त की कि सभी 53 कर्मचारियों पर संचयी प्रभाव के बिना वेतन वृद्धि/वेतन वृद्धियां रोकना ही उचित दंड होगा और इससे न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा, हालांकि, एकल न्यायाधीश द्वारा प्रबंधन को ब्याज देने का पारित आदेश उचित नहीं था और तदनुसार उसे अपास्त कर दिया गया। अतः, यह वर्तमान अपील है।

अपीलकर्ता-बैंक ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश और खंडपीठ दोनों ही प्रबंधन द्वारा पारित दंड आदेश में हस्तक्षेप करने में त्रुटि पर थे, विशेष रूप से तब जब उक्त कार्रवाई की पुष्टि श्रम न्यायालय द्वारा किए गए एक सुविचारित और तर्कसंगत पंचाट द्वारा की गई थी; कि एक बार जब जांच को नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुरूप मान लिया गया हो, आरोप साबित हो चुके हों और दंड का आदेश पारित हो चुका हो, तो इसे न्यायिक पुनर्विलोकन में किसी 'रिट-अदालत' द्वारा अपास्त नहीं किया जा सकता था; कि संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग तक ही सीमित था। उस शक्ति के प्रयोग में, उच्च न्यायालय प्रबंधन या श्रम न्यायालय दोनों में से किसी के भी निर्णय/आदेश/कार्रवाई के स्थान पर अपना निर्णय नहीं रख सकता था; कि यदि यह मान भी लिया जाए कि उच्च न्यायालय को ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करने का क्षेत्राधिकार है, तो भी, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और कर्मचारियों के खिलाफ लगाए गए तथा साबित हुए आरोपों पर विचार करते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि संचयी प्रभाव के साथ वेतन वृद्धि/वेतन वृद्धियां रोकने का आदेश नहीं दिया जा सकता था। इसके विपरीत, मामला बेहद गंभीर था जिसके लिए कहीं अधिक कड़े दंड की आवश्यकता थी, लेकिन उदार

दृष्टिकोण अपनाते हुए, प्रबंधन ने केवल एक 'छोटा' दंड लगाया था। उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे उचित आदेश को अपास्त नहीं किया जा सकता था; कि 'बैंकिंग सेवा' एक 'आवश्यक सेवा' है जिसमें जनउपयोगिता का तत्व शामिल है और ऐसी सेवा से जुड़े कर्मचारियों का यह कर्तव्य है कि वे अपने कर्तव्यों का ईमानदारी, निष्ठा और पूरे मन से निर्वहन करें; और यह कि तात्कालिक मामले में, न केवल कर्मचारियों ने कार्य पर आने से इनकार किया, बल्कि उन्होंने उन अन्य कर्मचारियों को भी धमकी देकर कार्य करने से रोका जिन्होंने प्रबंधन के साथ सौहार्दपूर्ण ढंग से मामला सुलझा लिया था और सार्वजनिक उपयोगिता उपक्रम के रूप में प्रबंधन को उसके दायित्वों के निर्वहन में सफलतापूर्वक बाधा पहुंचाई। इसलिए, इस पर गंभीर दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता थी। उच्च न्यायालय द्वारा यह मानने में कि सजा 'कठोर' थी, पूरी तरह से गलत धारणा थी।

उत्तरदाता ने तर्क प्रस्तुत किया कि चूंकि प्रबंधन द्वारा लगाया गया दंड अत्यधिक असंगत था, इसलिए एकल न्यायाधीश बैंक प्रबंधन को ब्याज सहित वेतन का भुगतान करने का निर्देश देने में सही थे और 'आनुशासिकता के सिद्धांत' के तहत, यह 'रिट न्यायालय' का न केवल अधिकार था, बल्कि कर्तव्य भी था कि वह इस बात पर विचार करे कि क्या कर्मचारियों पर लगाया गया जुर्माना कर्मचारियों द्वारा किए गए दुराचरण के अनुपात में था या नहीं।

अपील का निस्तारण करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट पूरी तरह से न्यायसंगत, कानूनी और उचित था तथा इसमें 'किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं' थी। इसलिए, उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए श्रम न्यायालय द्वारा पारित सुविचारित पंचाट में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था।
[कंडिका 14] [441-सी-डी]

2.1. यदि किसी प्राधिकारी द्वारा की गई कार्रवाई कानून के विपरीत, अनुचित, अतार्किक या अन्यथा अयुक्तियुक्त है, तो कानून की अदालत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करके ऐसी कार्रवाई में हस्तक्षेप कर सकती है। इस शक्ति का प्रयोग करने के ऐसे तरीकों में से एक, जिसे कानून में मान्यता प्राप्त है, 'आनुशायिकता का सिद्धांत' है। [कंडिका 16] [441-जी]

2.2. "आनुशायिकता" एक ऐसा सिद्धांत है जहां न्यायालय का सरोकार उस प्रक्रिया, पद्धति या तरीके से होता है जिसमें निर्णयकर्ता ने अपनी प्राथमिकताओं को व्यवस्थित किया है, किसी निष्कर्ष पर पहुंचा है या किसी निर्णय पर पहुंचा है। निर्णय लेने का मूल तत्त्व मामले के कारकों और विचारों को सापेक्ष महत्व देने में निहित है। इस प्रकार आनुशायिकता का सिद्धांत अनुमेय प्राथमिकताओं के नियम के विस्तार पर अभ्यास की वास्तविक प्रकृति को केंद्र में लाता है। [कंडिका 17] [441-जी; 442-ए]

डी-स्मिथ द्वारा 'ज्यूडिशियल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन' (1995); पृष्ठ 601-605; वेड एवं फोरसिथ द्वारा 'एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ' (2005) पृष्ठ 366; हैल्सबरीज लॉज ऑफ इंग्लैंड (चौथा संस्करण); पुनर्मुद्रण, खंड ॥ (1); पृष्ठ 144-45, का संदर्भ दिया गया।

2.3. इस सिद्धांत की उत्पत्ति प्रशासनिक कानून के क्षेत्र में हुई है। सरकार और उसके विभागों से, देश के मामलों का प्रशासन चलाने में, यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी नीति या इरादे के बयानों का सम्मान करें और नागरिकों के साथ बिना किसी विवेक के दुरुपयोग के पूर्ण व्यक्तिगत सम्मान के साथ व्यवहार करें। सरकारी मानदंडों को 'चुनने और छोड़ने' की नीति, चुनिंदा प्रयोज्यता या पक्षपात, मनमानापन या अयुक्तियुक्तता नहीं हो सकती। [कंडिका 20] [442-एफ-जी]

कौंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियन बनाम मिनिस्टर फॉर सिविल सर्विस, (1984) 3 ऑल ई आर 935, का संदर्भ दिया गया।

2.4. सामान्यतः, जब अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई हो और ऐसी जांच में तथ्यों का निष्कर्ष दर्ज किया गया हो, तो इसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक कि ऐसा निष्कर्ष 'बिना किसी सबूत' पर आधारित न हो या विकृत न हो, या ऐसा न हो कि मामले की परिस्थितियों में कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता। वर्तमान मामले में कर्मचारियों पर चार आरोप लगाए गए थे। एक जांच बिठाई गई और निष्कर्ष दर्ज किए गए कि सभी चार आरोप साबित हो गए थे। श्रम न्यायालय ने कर्मचारियों की शिकायतों पर विचार किया, उनके द्वारा उठाए गए सभी तर्कों को नकार दिया, जांच को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप माना और निष्कर्षों को साक्ष्य द्वारा समर्थित पाया। साबित हुए आरोपों को ध्यान में रखते हुए, श्रम न्यायालय ने सही माना कि कर्मचारियों पर लगाया गया दंड इतना कठोर नहीं कहा जा सकता कि उसमें हस्तक्षेप किया जाए। इसलिए, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने और प्रबंधन और/या श्रम न्यायालय के निर्णय के स्थान पर वस्तुतः अपना निर्णय प्रतिस्थापित करने में सही नहीं था। [कंडिका 28 और 29] [444-जी-एच; 445-ए-बी]

हिंद कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम वर्कमैन, [1965] 2 एससीआर 85 और इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स बनाम वर्कमैन, [1972] 1 एससीसी 40, का संदर्भ दिया गया।

3. यह स्थापित कानून है कि समान लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए और समान लोगों के साथ असमान व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। लेकिन, यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि असमान लोगों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जा सकता है। असमान लोगों के साथ समान व्यवहार करना भी संविधान के

अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त 'समान संरक्षण खंड' का उल्लंघन होगा। जहाँ तक 134 कर्मचारियों का संबंध है, उन्होंने समझौते के नियमों और शर्तों को स्वीकार कर लिया और काम पर लौट आए। दूसरी ओर, 53 कर्मचारियों ने समझौते को स्वीकार नहीं किया, हड़ताल जारी रखी जिसे अवैध और गैर-कानूनी घोषित किया गया था और विभागीय जांच में वे दोषी पाए गए थे। इसके अलावा, उन्होंने वफादार श्रमिकों को धमकी देकर गैर-कानूनी हथकंडे अपनाए। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि 53 कर्मचारी उसी एक वर्ग का हिस्सा हैं जिसमें 134 कर्मचारी थे। अतः, 53 कर्मचारी उस समान लाभ का दावा नहीं कर सकते जो 134 कर्मचारियों को दिया गया था। [कंडिका 35] [447-बी-डी]

बंगाल भट्टी कोल कंपनी बनाम राम प्रवेश सिंह व अन्य, [1964] 1 एस.सी.आर. 709; एम.पी. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम जगदीश चंद्र शर्मा, [2005] 3 एस.सी.सी. 401; एम.पी. गंगाधरन व अन्य बनाम केरल राज्य व अन्य, [2006] 6 एस.सी.सी. 162; यूनियन ऑफ इंडिया बनाम परमानंद, [1989] 2 एस.सी.सी. 177 और ओबेरजी (पी) लिमिटेड बनाम मोहम्मद शफीक खान, [2005] 8 एस.सी.सी. 47, पर भरोसा किया गया।

4.1. भले ही इस न्यायालय की यह राय है कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश लाभ देने में सही नहीं थे और उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश भी उचित नहीं है, फिर भी उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित अंतिम आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा। इसलिए, इस बिंदु पर कानून की घोषणा करते हुए, न्याय को दया के साथ संतुलित किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण शक्ति के प्रयोग में, उन 53 कर्मचारियों को वंचित करना उचित नहीं होगा जिन्हें उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश के तहत सीमित लाभ प्राप्त हुए हैं। [कंडिका 41] [449-बी-सी]

4.2. न तो एकल न्यायाधीश और न ही उच्च न्यायालय की खंडपीठ प्रबंधन द्वारा की गई कार्रवाई और श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायसंगत थे, जो पूरी तरह से कानून के अनुरूप था। मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में तथा संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित अंतिम आदेश में कोई बदलाव नहीं किया जाता है। [कंडिका 42] [449-डी]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2007 की दीवानी अपील संख्या 2106 ।

मद्रास उच्च न्यायालय के 2001 की रिट अपील संख्या 45 में दिनांक 3.11.2004 के निर्णय और आदेश से उत्पन्न।

अपीलकर्ताओं के लिए के.वी. विश्वनाथन, बी. रघुनाथ, अनूप कुमार, राजीव कुमार सिंह और आर. नेदुमारन।

उत्तरदाताओं के लिए एन.जी.आर. प्रसाद और एस.आर. सेतिया।

न्यायालय का निर्णय द्वारा सुनाया गया:

सी.के. ठक्कर, न्यायमूर्ति 1. विशेष अनुमति प्रदान की जाती है।

2. एक सार्वजनिक उपयोगिता उपक्रम (सहकारी बैंक) इस अपील में मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा 1993 की रिट याचिका संख्या 11948 में दिनांक 18 सितंबर, 2000 को पारित और उक्त न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 2001 की रिट अपील संख्या 45 में 3 नवंबर, 2004 को संशोधित आदेश को चुनौती दे रहा है।

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

3. इस अपील में उठाए गए एक महत्वपूर्ण प्रश्न को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए प्रासंगिक तथ्यों को रेखांकित करना आवश्यक है।

4. अपीलकर्ता कोयंबटूर जिला केंद्रीय सहकारी बैंक है जिसका मुख्यालय कोयंबटूर में है। कोयंबटूर के राजस्व जिले में इसकी 17 शाखाएं हैं। अपीलकर्ता-बैंक का मामला है कि कोयंबटूर जिला केंद्रीय बैंक कर्मचारी संघ (संक्षेप में 'संघ') ने 31 मार्च, 1972 को एक 'हड़ताल का नोटिस' दिया जो प्रबंधन को 5 अप्रैल, 1972 को प्राप्त हुआ, जिसमें 14 अप्रैल, 1972 से हड़ताल पर जाने का प्रस्ताव था। इस तरह के नोटिस और हड़ताल पर जाने का कारण प्रबंधन द्वारा कुछ कर्मचारियों का निलंबन और उनका वेतन रोकना था। चूंकि हड़ताल का आह्वान अवैध था और नोटिस औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के अनुरूप नहीं था, इसलिए हड़ताल पर जाने की कार्यवाही गैर-कानूनी थी। संघ को तदनुसार सूचित किया गया था कि वे हड़ताल पर न जाएं। इस बीच, श्रम अधिकारी, कोयंबटूर ने संघ द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दों के संबंध में सुलह की कार्यवाही शुरू की। श्रम अधिकारी की उचित सलाह के बावजूद, कर्मचारियों ने 17 अप्रैल, 1972 से हड़ताल शुरू कर दी। यह हड़ताल पूरी तरह से अवैध और गैर-कानूनी थी। 19 अप्रैल, 1972 को संघ को नोटिस जारी किया गया जिसमें कहा गया था कि श्रमिक 22 अप्रैल, 1972 तक बिना शर्त माफी मांगकर काम पर लौट आएंगे। कर्मचारियों ने इसे स्वीकार कर लिया। प्रबंधन और संघ के बीच एक समझौता हो गया और 134 कर्मचारियों ने 'हड़ताल का आह्वान' छोड़ दिया और काम फिर से शुरू कर दिया। हालांकि, 53 कर्मचारियों ने कार्य पर आने से इनकार कर दिया और अपनी अवैध हड़ताल तथा दुराचरण के कृत्यों को जारी रखा। कर्मचारियों के इन अवैध कृत्यों ने बैंक के काम को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया। यह आरोप लगाया गया था कि इन श्रमिकों ने न केवल कार्य ग्रहण नहीं की और अवैध तथा गैर-कानूनी हड़ताल जारी रखी, बल्कि अन्य कर्मचारियों को भी कार्य पर लौटने से रोका और काम पर वापस आने पर उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। इसलिए, 53 श्रमिकों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, उन्हें निलंबित कर दिया

गया और जांच बिठाई गई। कर्मचारियों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों की सूचना दी गई, जिससे उन्होंने इनकार किया। नोटिस के बावजूद, कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही में शामिल नहीं हुए और अनुपस्थित रहे। इसलिए, प्रबंधन उनके खिलाफ एकपक्षीय अनुशासनात्मक जांच आगे बढ़ाने के लिए मजबूर हुआ। 6 जनवरी, 1973 के एक आदेश द्वारा, श्रमिकों को आरोपों का दोषी पाया गया और दंड का आदेश पारित किया गया। उक्त आदेश द्वारा श्रमिकों को दो दंड दिए गए; (i) संचयी प्रभाव के साथ 1-4 वर्षों के लिए वेतन वृद्धि रोकना; और (ii) निलंबन की अवधि के दौरान वेतन का भुगतान न करना। बैंक के अनुसार, यह मामला सेवा से बर्खास्तगी का कठोर दंड लगाने के लिए बिल्कुल उपयुक्त था, लेकिन उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए, कर्मचारियों पर यह अत्यधिक दंड नहीं लगाया गया और उन्हें बैंक द्वारा सेवा में बनाए रखा गया। कर्मचारी 17 जनवरी, 1973 को काम पर लौट आए। उन्हें इस आदेश को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए था और प्रबंधन द्वारा अपनाए गए रवैये की सराहना करनी चाहिए थी। हालांकि, कर्मचारियों ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने अपील दायर करना पसंद किया जिसे कार्यकारी समिति ने खारिज कर दिया।

श्रम न्यायालय का निर्णय

5. श्रमिक, निर्णय से व्यथित होने पर, एक औद्योगिक विवाद खड़ा किया और सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 10 के तहत इस मामले को श्रम न्यायालय, कोयंबटूर को संदर्भित किया गया। श्रम न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने के बाद निम्नलिखित दो मुद्दे तय किए;

1. क्या 1 से 53 श्रमिकों पर संचयी प्रभाव के साथ 1 से 4 वेतनवृद्धियों को रोकने का दंड न्यायसंगत है?
2. क्या 53 श्रमिक निलंबन की अवधि के लिए मजदूरी का भुगतान पाने के हकदार हैं?

6. संपूर्ण साक्ष्यों और इस बिंदु पर प्रासंगिक वाद निर्णय पर विचार करने के बाद, न्यायालय ने माना कि श्रमिकों के खिलाफ लगाए गए सभी चारों आरोप साबित हो गए थे। इसने जांच को कानूनी, वैध और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप भी माना। साक्ष्यों से यह स्थापित हुआ कि कर्मचारियों द्वारा धमकी दी गई थी।

7. श्रम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला;

"आपराधिक मामलों के विपरीत यह आवश्यक नहीं है कि साक्ष्य संदेह से परे होने चाहिए। फिर भी, गवाहों ने आरोपों को साबित करने के लिए स्पष्ट साक्ष्य दिए हैं। इसलिए, हमें उन्हें स्वीकार करना होगा और यह मानना होगा कि सभी 53 कर्मचारियों के खिलाफ आरोप 1 से 4 साबित हो चुके हैं।"

8. उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर, श्रम न्यायालय ने माना कि यह नहीं कहा जा सकता कि प्रबंधन की कार्रवाई को अवैध, गैर-कानूनी या अनुचित बताया जा सकता है। तदनुसार, श्रमिकों की मांगों को खारिज कर दिया गया और संदर्भ को खारिज कर दिया गया।

उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण

9. श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट से व्यथित होकर, संघ ने एक रिट याचिका दायर करके उच्च न्यायालय का रुख किया। विद्वान एकल न्यायाधीश श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से असहमत नहीं हुए और उन्होंने माना कि श्रमिक उस अवधि के लिए मजदूरी के हकदार नहीं थे जिस अवधि में उन्होंने काम नहीं किया था। हालाँकि, जहाँ तक दूसरे दंड का संबंध है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि संचयी प्रभाव के साथ 1 से 4 वार्षिक वेतनवृद्धियों को रोकना 'कठोर' था। संचयी प्रभाव के साथ वार्षिक वेतनवृद्धि रोकने के दंड के दूरगामी परिणाम थे। यह श्रमिकों को उनकी पूरी सेवा के दौरान और उनके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले सेवानिवृत्ति लाभों में प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। यह उनके परिवारों को भी प्रभावित करेगा।

विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार, ऐसा दंड लगाना 'कानूनन वैध नहीं' था और यह अपास्त किए जाने योग्य था। तदनुसार, याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया, जिसमें निलंबन की अवधि के लिए मजदूरी वापस लेने की पुष्टि की गई, लेकिन वेतनवृद्धि रोकने के दंड के आदेश को अपास्त कर दिया गया। प्रबंधन को आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से साठ दिनों के भीतर श्रमिकों को वेतनवृद्धि रोकने के संबंध में बकाया राशि का भुगतान '12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज' के साथ करने का निर्देश दिया गया था।

10. प्रबंधन विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित उपरोक्त आदेश से व्यथित था और उसने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अंतर-न्यायालय अपील दायर की। खंडपीठ ने सही उल्लेख किया कि यह स्थापित कानून है कि दंड का चुनाव और मात्रा का प्रश्न प्रबंधन के विवेक के भीतर है। "लेकिन, सजा अपराध और अपराधी के अनुकूल होनी चाहिए"। यदि यह अत्यधिक कठोर या प्रतिशोधात्मक, असंगत है या न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देती है, तो न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है। फिर इस न्यायालय के एक प्रमुख निर्णय *रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ और अन्य*, [1987] 4 एस.सी.सी. 611 का संदर्भ देते हुए, खंडपीठ ने माना कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में संशोधन की आवश्यकता थी। खंडपीठ ने राय व्यक्त की कि उचित दंड सभी 53 कर्मचारियों पर संचयी प्रभाव के बिना वेतनवृद्धि/वेतनवृद्धियों को रोकना होगा, जिससे न्याय के उद्देश्य पूरे होंगे। खंडपीठ ने यह भी माना कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रबंधन को ब्याज भुगतान करने का निर्देश देने वाला आदेश उचित नहीं था और तदनुसार उसे अपास्त कर दिया गया। यही वह आदेश है जिसे प्रबंधन द्वारा वर्तमान अपील में चुनौती दी गई है।

विरोधी दलीलें

11. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है।

अपीलकर्ता-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंडपीठ दोनों ही प्रबंधन द्वारा दिए गए दंड के आदेश में हस्तक्षेप करने में त्रुटि पर थे, विशेष रूप से तब जब उक्त कार्यवाई की पुष्टि श्रम न्यायालय, कोयंबटूर द्वारा एक सुविचारित और तर्कसंगत अधिनिर्णय द्वारा की गई थी। यह आग्रह किया गया कि एक बार जब जांच नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुरूप मानी जा चुकी है, आरोप साबित हो चुके हैं और दंड का आदेश पारित किया जा चुका है, तो इसे न्यायिक पुनर्विलोकन में एक 'रिट-न्यायालय' द्वारा अपास्त नहीं किया जा सकता था। श्रम न्यायालय ने तथ्य का एक ऐसा निष्कर्ष दर्ज किया जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नहीं बदला गया कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं किया गया था। जांच कानून के अनुरूप संचालित की गई थी और कर्मचारियों के खिलाफ लगाए गए सभी आरोप स्थापित हो गए थे। यदि ऐसा है, तो उच्च न्यायालय न्यायाधिकरण के अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने में स्पष्ट रूप से गलत था। अधिवक्ता के अनुसार, उच्च न्यायालय न तो प्रबंधन द्वारा की गई कार्यवाई पर और न ही दिए गए दंड की मात्रा पर अपीलीय शक्ति का प्रयोग कर रहा था। न्यायालय का श्रम न्यायालय पर अपीलीय अधिकार क्षेत्र भी नहीं था। संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग तक सीमित था। उस शक्ति के प्रयोग में, उच्च न्यायालय प्रबंधन या श्रम न्यायालय दोनों में से किसी के भी निर्णय/आदेश/कार्यवाई के स्थान पर अपना खुद का निर्णय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता था। इसलिए, उच्च न्यायालय का आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। यह भी आग्रह किया गया कि यदि यह मान भी लिया जाए कि उच्च न्यायालय को ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार क्षेत्र है, तो भी, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और श्रमिकों के खिलाफ लगाए गए और साबित हुए आरोपों पर

विचार करते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि संचयी प्रभाव के साथ वेतनवृद्धि/वेतनवृद्धियों को रोकने का आदेश नहीं दिया जा सकता था। इसके विपरीत, मामला बहुत गंभीर था जिसके लिए बहुत अधिक गंभीर दंड की आवश्यकता थी, लेकिन उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए, प्रबंधन ने केवल एक 'लघु' दंड लगाया था। उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे उचित आदेश को अपास्त नहीं किया जा सकता था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 'बैंकिंग सेवा' एक 'आवश्यक सेवा' है। इसमें सार्वजनिक उपयोगिता का तत्व है और यह इस सेवा से जुड़े कर्मचारियों का कर्तव्य था कि वे ईमानदारी, निष्ठा और पूरे दिल से अपने कर्तव्यों का पालन करें। वर्तमान मामले में, न केवल श्रमिकों ने काम पर आने से इनकार कर दिया, बल्कि उन्होंने अन्य कर्मचारियों को, जिन्होंने प्रबंधन के साथ सौहार्दपूर्ण ढंग से मामला सुलझा लिया था, धमकी देकर काम पर आने से रोका और सार्वजनिक उपयोगिता उपक्रम के रूप में प्रबंधन को उसके दायित्वों के निर्वहन में सफलतापूर्वक बाधा पहुंचाई। इसलिए, गंभीर दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता थी। उच्च न्यायालय द्वारा यह मानने में कि दंड 'कठोर' था, पूर्ण और संपूर्ण गलत धारणा थी। इसलिए, प्रबंधन की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित और खंडपीठ द्वारा संशोधित आदेश को प्रबंधन द्वारा की गई और श्रम न्यायालय, कोयंबटूर द्वारा अनुमोदित कार्रवाई की पुष्टि करते हुए अपास्त किया जाना चाहिए।

12. दूसरी ओर, उत्तरदाता-संघ के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया। उनके अनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार करने में पूरी तरह से न्यायसंगत थे, जिसमें उन्होंने यह टिप्पणी की थी कि श्रमिकों पर लगाया गया दंड 'स्पष्ट रूप से कठोर' था और दंड के उस हिस्से को अपास्त कर दिया था जिसके द्वारा वेतनवृद्धि/वेतनवृद्धियों को रोका गया था। चूंकि प्रबंधन द्वारा लगाया गया दंड अत्यधिक असंगत था, इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश बैंक प्रबंधन को 12% ब्याज के साथ

वेतन का भुगतान करने का निर्देश देने में भी सही थे। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यह निस्संदेह सच है कि खंडपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्देश को आंशिक रूप से अपास्त कर दिया, जिसमें श्रमिकों की वेतनवृद्धि/वेतनवृद्धियों को संचयी प्रभाव के बिना रोकने की अनुमति देकर दंड को संशोधित किया गया और 12% ब्याज के साथ वेतन के भुगतान को अपास्त कर दिया गया, लेकिन चूंकि खंडपीठ द्वारा पारित आदेश के उक्त हिस्से के खिलाफ संघ द्वारा कोई अपील नहीं की गई है, इसलिए यह कायम रहेगा। लेकिन बैंक प्रबंधन द्वारा खंडपीठ के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई मामला नहीं बनाया गया है और अपील खारिज की जानी चाहिए।

दर्ज किए गए निष्कर्ष

13. हमने पक्षों के विरोधी तर्कों पर अपना अत्यंत गंभीर और विचारशील ध्यान दिया है। ऊपर उल्लिखित तथ्यों और जांच की कार्यवाही तथा दंड के अंतिम आदेश से, कुछ तथ्य अब विवादित नहीं रह गए हैं। संघ द्वारा हड़ताल का आह्वान किया गया था जो अवैध, गैर-कानूनी और कानून के अनुरूप नहीं था। सुलह की कार्यवाही की गई थी और एक तरफ प्रबंधन और दूसरी तरफ संघ के बीच विवाद का सौहार्दपूर्ण समझौता हो गया था। ऐसे समझौते के परिणामस्वरूप, 134 श्रमिकों ने काम फिर से शुरू कर दिया। हालाँकि, 53 श्रमिकों ने हड़ताल के अवैध होने के बावजूद काम पर आने से इनकार कर दिया। इसलिए, उनकी कार्रवाई *प्रथम दृष्टया* अवैध थी। ऐसी परिस्थितियों में, श्रमिकों को निलंबित कर दिया गया और अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई। कई अवसर दिए जाने के बावजूद, उन्होंने जांच में सहयोग नहीं किया और जांच अधिकारी को उनके खिलाफ *एकतरफा* आगे बढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। श्रमिकों के खिलाफ चार आरोप लगाए गए थे;

- (i) कर्मचारी 17 अप्रैल, 1972 से काम पर नहीं आए;
- (ii) उन्होंने उस तारीख से, यानी 17 अप्रैल, 1972 से अवैध हड़ताल में भाग लिया;
- (iii) उन्होंने काम पर लौटने वाले अन्य कर्मचारियों को धमकी देकर काम में शामिल होने से रोका; और
- (iv) उन्होंने 17 अप्रैल, 1972 को मजदूरी लेने आए कर्मचारियों को रोका।

14. जांच में, कर्मचारियों के खिलाफ लगाए गए सभी आरोप स्थापित हो गए। उक्त निष्कर्ष के आलोक में, प्रबंधन ने (i) संचयी प्रभाव के साथ 1 से 4 वर्षों के लिए वेतनवृद्धि रोकने; और (ii) निलंबन की अवधि के दौरान वेतन का भुगतान न करने का दंड लगाया। हमारी सुविचारित राय में, इस कार्रवाई को मनमाना, अवैध, अनुचित या अन्यथा आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता। जब संघ ने कार्रवाई को चुनौती दी और 'उचित सरकार' द्वारा श्रम न्यायालय, कोयंबटूर को संदर्भ दिया गया, तो श्रम न्यायालय ने सभी प्रश्नों पर उनके सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया। दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद, श्रम न्यायालय ने संघ के इस तर्क को खारिज कर दिया कि कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं थी और इसलिए जांच दूषित थी। इसने माना कि जांच कानून के अनुसार थी। इसने यह निष्कर्ष भी दर्ज किया कि श्रमिकों के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हो गए थे और श्रमिकों के खिलाफ लगाए गए और साबित हुए आरोपों को देखते हुए, उन पर लगाया गया दंड अत्यधिक, कठोर या असंगत नहीं कहा जा सकता था। तदनुसार इसने श्रमिकों के खिलाफ संदर्भ का निपटारा कर दिया। हमारी सुविचारित राय में, श्रम न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय पूरी तरह से न्यायसंगत, कानूनी और उचित था तथा इसमें 'किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं' थी। इसलिए, उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में श्रम न्यायालय द्वारा पारित सुविचारित अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था।

15. हालाँकि, संघ के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 'आनुपातिकता के सिद्धांत' के तहत, यह न केवल शक्ति थी, बल्कि 'रिट न्यायालय' का कर्तव्य भी था कि वह विचार करे कि क्या श्रमिकों पर लगाया गया जुर्माना श्रमिकों द्वारा किए गए कदाचार के अनुपात में था। इस संबंध में हमारा ध्यान दोनों पक्षों द्वारा अंग्रेजी न्यायालयों के साथ-साथ इस न्यायालय के कई निर्णयों की ओर आकर्षित किया गया।

आनुपातिकता का सिद्धांत

16. जहाँ तक आनुपातिकता के सिद्धांत का संबंध है, इसमें कोई दो राय नहीं है कि उक्त सिद्धांत न केवल हमारी कानूनी प्रणाली में आ चुका है बल्कि यह स्थापित हो चुका है। प्रशासनिक कानून के तेजी से विकास और विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा विवेकाधीन शक्तियों के संभावित दुरुपयोग को नियंत्रित करने की आवश्यकता और अनिवार्यता के साथ, न्यायालयों द्वारा कुछ सिद्धांत विकसित किए गए हैं। यदि किसी प्राधिकारी द्वारा की गई कोई कार्रवाई कानून के विपरीत, अनुचित, तर्कहीन या अन्यथा अनुचित है, तो कानून की न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करके ऐसी कार्रवाई में हस्तक्षेप कर सकती है। शक्ति का प्रयोग करने के ऐसे तरीकों में से एक, जिसे कानून में जाना जाता है, 'आनुपातिकता का सिद्धांत' है।

17. 'आनुपातिकता' एक ऐसा सिद्धांत है जहाँ न्यायालय का संबंध उस प्रक्रिया, पद्धति या तरीके से होता है जिसमें निर्णय लेने वाले ने अपनी प्राथमिकताओं को व्यवस्थित किया है, किसी निष्कर्ष पर पहुँचा है या किसी निर्णय पर पहुँचा है। निर्णय लेने का मूल सार मामले में कारकों और विचारों के सापेक्ष महत्व के ठहराव में निहित है। इस प्रकार आनुपातिकता का सिद्धांत अभ्यास की वास्तविक प्रकृति - अनुमेय प्राथमिकताओं के नियम के विस्तार को केंद्र में लाता है।

18. डी स्मिथ का कहना है कि 'आनुपातिकता' में 'संतुलन परीक्षण' और 'आवश्यकता परीक्षण' शामिल हैं। जहाँ पहला ('संतुलन परीक्षण') अत्यधिक दमनकारी दंडों या अधिकारों या हितों के उल्लंघन और प्रासंगिक विचारों के स्पष्ट असंतुलन की जांच की अनुमति देता है, वहीं दूसरा ('आवश्यकता परीक्षण') मानव अधिकारों के उल्लंघन को न्यूनतम प्रतिबंधात्मक विकल्प तक सीमित रखने की आवश्यकता पर बल देता है।

[*'ज्यूडिशियल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन'*; (1995); पृष्ठ 601-605; कंडिका 13.085; यह भी देखें *वेड एवं फॉर्सेथ*; *'एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ'*; (2005); पृष्ठ 366]

19. *हल्सबरीज लॉज ऑफ इंग्लैंड*, (चौथा संस्करण); पुनः-प्रकाशन, खंड 1(1); पृष्ठ 144-45; कंडिका 78 में कहा गया है;

"न्यायालय विवेकाधीन शक्तियों के ऐसे प्रयोग को अभिखंडित कर देगी जिसमें उस उद्देश्य, जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है, और उस उद्देश्य के लिए उपयोग किए गए साधनों के बीच कोई उचित संबंध नहीं है, या जहाँ प्रशासनिक निकायों या अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा लगाए गए दंड प्रासंगिक कदाचार के पूरी तरह से बाहर हैं। आनुपातिकता का सिद्धांत यूरोपीय कानून में अच्छी तरह से स्थापित है, और अंग्रेजी न्यायालयों द्वारा वहां लागू किया जाएगा जहां घरेलू न्यायालयों में यूरोपीय कानून लागू करने योग्य है। आनुपातिकता का सिद्धांत अंग्रेजी कानून में अभी भी विकास के चरण में है; आनुपातिकता की कमी को आमतौर पर अंग्रेजी कानून में समीक्षा के लिए एक अलग आधार के रूप में नहीं माना जाता है, बल्कि इसे स्पष्ट अनुचितता के एक संकेत के रूप में माना जाता है।"

20. इस सिद्धांत की उत्पत्ति प्रशासनिक कानून के क्षेत्र में हुई है। सरकार और उसके विभागों से, देश के मामलों का प्रशासन चलाने में, यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी नीति या इरादे के बयानों का सम्मान करें और नागरिकों के साथ विवेक के दुरुपयोग के बिना पूर्ण व्यक्तिगत विचार के साथ व्यवहार करें। सरकारी मानदंडों की कोई 'पिक एंड चूज', चयनात्मक प्रयोज्यता या अनुचितता, मनमानापन या अतार्किकता नहीं हो सकती। 'तोप से मक्खी मारना' अनुमेय नहीं है। जैसा कि कई बार कहा जा चुका है; "जहाँ छीलने वाले चाकू से काम चल जाए, वहाँ युद्ध की कुल्हाड़ी वर्जित है।"

21. *काउंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियन बनाम मिनिस्टर फॉर सिविल सर्विस*, (1984) 3 ऑल ई.आर. 935 : (1984) 3 डब्ल्यू.एल.आर. 1174 : (1985) ए.सी. 374 (एच एल) के प्रसिद्ध निर्णय में, लॉर्ड डिप्लॉक ने घोषणा की;

"मेरा मानना है कि न्यायिक पुनर्विलोकन आज एक ऐसे चरण में विकसित हो चुकी है जब, उन चरणों के किसी भी विश्लेषण को दोहराए बिना जिनके द्वारा यह विकास हुआ है, कोई भी प्रशासनिक कार्रवाई को न्यायिक पुनर्विलोकन द्वारा नियंत्रण के अधीन रखने वाले आधारों को तीन शीर्षकों के तहत आसानी से वर्गीकृत कर सकता है। पहले आधार को मैं 'अवैधता' कहूँगा, दूसरे को 'अतार्किकता' और तीसरे को 'प्रक्रियात्मक अनुचितता'। इसका मतलब यह नहीं है कि मामले-दर-मामले के आधार पर आगे का विकास समय के साथ और आधार नहीं जोड़ सकता है। मेरे ध्यान में विशेष रूप से भविष्य में आनुपातिकता के सिद्धांत को संभावित रूप से अपनाना है..."

(जोर दिया गया)

22. सी.सी.एस.यू. को बाद के कई मामलों में अंग्रेजी न्यायालयों द्वारा दोहराया गया है। हम उन सभी मामलों का संदर्भ देना आवश्यक नहीं समझते।

23. जहाँ तक हमारी कानूनी प्रणाली का संबंध है, यह सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित है। सी.सी.एस.यू. से पहले भी, इस न्यायालय ने माना है कि यदि किसी नियोक्ता द्वारा कर्मचारी पर लगाया गया दंड अत्यधिक भारी, आनुपातिक रूप से उच्च या अनुचित रूप से कठोर है, तो वह न्यायिक जांच से छूट का दावा नहीं कर सकता है, और न्यायालय के लिए उचित मामलों में ऐसे जुर्माने में हस्तक्षेप करना हमेशा खुला है।

24. *हिंद कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम वर्कमैन*, [1965] 2 एस.सी.आर. 85 : ए.आई.आर. (1965) एस.सी. 917 में, कुछ कर्मचारी एक विशेष दिन को छुट्टी मानकर काम से अनुपस्थित रहे। उन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। औद्योगिक न्यायाधिकरण ने इस कार्रवाई को अपास्त कर दिया। इस न्यायालय ने माना कि अनुपस्थिति को बिना वेतन के अवकाश के रूप में माना जा सकता था। श्रमिकों को चेतावनी दी जा सकती थी और उन पर जुर्माना लगाया जा सकता था। (लेकिन) "यह सोचना असंभव है कि कोई भी उचित नियोक्ता अपने पूरे स्थायी कर्मचारियों पर इस तरह से बर्खास्तगी का चरम दंड लगाएगा।" न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि श्रमिकों पर लगाया गया दंड न केवल गंभीर और गलती के अनुपात से बाहर था, बल्कि ऐसा था जिसे, हमारे निर्णय में, कोई भी उचित नियोक्ता नहीं लगाता।

(जोर दिया गया)

25. *इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स बनाम वर्कमैन*, [1972] 1 एस.सी.सी. 40 : ए.आई.आर. (1972) एस.सी. 763 में, फेडरेशन के कर्मचारी के खिलाफ यह आरोप था कि उसने फेडरेशन और इंटरनेशनल चैंबर ऑफ कॉमर्स को कानूनी नोटिस जारी किए जिससे फेडरेशन - जो कि नियोक्ता था - की बदनामी हुई। कर्मचारी के खिलाफ घरेलू जांच की गई और उसकी सेवाएं

समाप्त कर दी गई। इस दंड को कथित और स्थापित कदाचार के प्रति असंगत माना गया। इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि "फेडरेशन ने राई का पहाड़ बना दिया था और एक मामूली मामले को अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान की हानि से जुड़ा मामला बना दिया था।"

26. पहले उल्लिखित *रंजीत ठाकुर* के मामले में, एक सेना अधिकारी ने अपने वरिष्ठ अधिकारी द्वारा दिए गए भोजन को न खाकर उनके कानूनी आदेश की अवज्ञा की थी। कोर्ट मार्शल की कार्यवाही शुरू की गई और एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें सेवा से भी बर्खास्त कर दिया गया, साथ ही यह अतिरिक्त अयोग्यता भी जोड़ी गई कि वे भविष्य के रोजगार के लिए अनुपयुक्त होंगे।

27. आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू करते हुए और सी.सी.एस.यू. का अनुसरण करते हुए, *न्यायमूर्ति वेंकटचलैया* (जैसा कि माननीय न्यायाधीश तब थे) ने टिप्पणी की:

"दंड के चयन और उसकी मात्रा का प्रश्न कोर्ट-मार्शल के अधिकार क्षेत्र और विवेक के भीतर है। लेकिन सजा अपराध और अपराधी के अनुकूल होनी चाहिए। यह प्रतिशोधात्मक या अत्यधिक कठोर नहीं होनी चाहिए। यह अपराध के प्रति इतनी असंगत नहीं होनी चाहिए जो अंतरात्मा को झकझोर दे और अपने आप में पूर्वाग्रह का निर्णायक साक्ष्य बन जाए। *न्यायिक पुनर्विलोकन की अवधारणा के हिस्से के रूप में आनुपातिकता का सिद्धांत यह सुनिश्चित करेगा कि एक ऐसे पहलू पर भी, जो अन्यथा कोर्ट-मार्शल के अनन्य क्षेत्र के भीतर है, यदि न्यायालय का निर्णय सजा के संबंध में भी तर्क की घोर अवहेलना करता है, तो वह सजा सुधार से मुक्त नहीं होगी। तर्कहीनता और विकृतता न्यायिक पुनर्विलोकन के स्वीकृत आधार हैं।"*

(जोर दिया गया)

आनुपातिकता का सिद्धांत: क्या लागू है

28. उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि हमारी कानूनी प्रणाली ने भी आनुपातिकता के सिद्धांत को स्वीकार किया है। हालाँकि, प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय का आनुपातिकता के सिद्धांत का आह्वान करना और उसे लागू करना न्यायसंगत था। हमारे निर्णय में, इसका उत्तर नकारात्मक होना चाहिए। सामान्यतः, जब अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाती है और ऐसी जांच में तथ्य का निष्कर्ष दर्ज किया जाता है, तो उसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक कि ऐसा निष्कर्ष 'बिना किसी साक्ष्य' पर आधारित न हो या विकृत न हो, या ऐसा न हो कि मामले की परिस्थितियों में कोई भी उचित व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता था। वर्तमान मामले में, श्रमिकों के खिलाफ चार आरोप लगाए गए थे। एक जांच स्थापित की गई और निष्कर्ष दर्ज किए गए कि सभी चारों आरोप साबित हो गए थे। श्रम न्यायालय ने श्रमिकों की शिकायतों पर विचार किया, उनके द्वारा उठाए गए सभी तर्कों को खारिज कर दिया, जांच को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप माना और निष्कर्षों को साक्ष्य द्वारा समर्थित पाया। साबित हुए आरोपों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, श्रम न्यायालय ने सही माना कि श्रमिकों पर लगाया गया दंड इतना कठोर नहीं कहा जा सकता था कि उसमें हस्तक्षेप किया जाए।

29. इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने और व्यावहारिक रूप से प्रबंधन और/या श्रम न्यायालय के निर्णय के स्थान पर अपना निर्णय प्रतिस्थापित करने में सही नहीं था। हमारे लिए, अपीलकर्ता-बैंक के विद्वान अधिवक्ता यह प्रस्तुत करने में भी सही हैं कि आरोप 1 और 2 के अलावा, आरोप 3 और 4 प्रकृति में 'अत्यंत गंभीर' थे और उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें कम करके या हल्का नहीं आंका जा सकता था।

30. इस संबंध में, इस न्यायालय के एक निर्णय *बंगाल भट्टी कोल कंपनी बनाम राम प्रवेश सिंह और अन्य*, [1964] 1 एस.सी.आर. 709 : ए.आई.आर. (1964) एस.सी. 486 का संदर्भ देना लाभदायक है। उस मामले में, उत्तरदाता अपीलकर्ता के कर्मचारी थे। अपीलकर्ता के प्रतिष्ठान में हड़ताल चल रही थी। उत्तरदाताओं ने वफादार और काम करने के इच्छुक ट्राम चालकों को कोयला खदान में काम करने से रोका और उन श्रमिकों पर इस बाधा में शामिल होने के लिए दबाव डाला। उत्तरदाताओं को एक आरोप-पत्र दिया गया और अनुशासनात्मक जांच शुरू की गई। उन्हें दोषी पाया गया और सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। चूंकि एक अन्य संदर्भ लंबित था, इसलिए औद्योगिक न्यायाधिकरण की मंजूरी मांगी गई थी, जो दे दी गई थी। हालाँकि, एक संदर्भ में, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने माना कि बर्खास्तगी का दंड अनावश्यक था और यह उत्पीड़न के समान था। प्रबंधन ने इस न्यायालय का रुख किया।

31. अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायाधिकरण के आदेश को अपास्त करते हुए और बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखते हुए, इस न्यायालय ने कहा;

अब इसमें कोई संदेह नहीं है कि हालांकि साबित कदाचार के मामले में, सामान्यतः दंड लगाना प्रबंधन के विवेक के भीतर हो सकता है, लेकिन ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ साबित कदाचार के लिए बर्खास्तगी का दंड इतना अंतरात्मा के विरुद्ध या अपराध की प्रकृति के प्रति इतना घोर असंगत हो कि न्यायाधिकरण केवल दिए गए दंड से ही उत्पीड़न का निष्कर्ष निकालने में सक्षम हो। लेकिन हमारी राय है कि वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं है और केवल इस तथ्य से उत्पीड़न का कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि इस मामले में बर्खास्तगी का दंड लगाया गया था न कि जुर्माना या निलंबन। यह विवाद में नहीं है कि जिन दिनों कदाचार किया गया था, उन दिनों हड़ताल चल रही थी। अपीलकर्ता का यह मामला था कि

हड़ताल अनुचित और अवैध थी और ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेत्रीय श्रम आयुक्त, केंद्रीय, धनबाद, अपीलकर्ता के इस विचार से सहमत थे। ऐसी ही हड़ताल के दौरान यह कदाचार हुआ था और कदाचार यह था कि इन तेरह श्रमिकों ने अन्य श्रमिकों को, जो काम करने के इच्छुक थे, ट्राम लाइनों के बीच बैठकर उन्हें अपना काम करने से शारीरिक रूप से रोका था। हमारी राय में यह तेरह श्रमिकों की ओर से गंभीर कदाचार था और यदि यह पाया जाता है - जैसा कि पाया गया है - साबित हो जाता है, तो बर्खास्तगी का दंड पूरी तरह से न्यायसंगत होगा।"

(जोर दिया गया)

32. एम.पी. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम जगदीश चंद्र शर्मा, [2005] 3 एस.सी.सी. 401 में, इस न्यायालय ने माना कि कर्मचारी द्वारा कार्यस्थल पर अनुशासन भंग के लिए बर्खास्तगी को लगाए गए और स्थापित किए गए आरोप के प्रति असंगत नहीं कहा जा सकता है और इस आधार पर किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी कि ऐसा दंड लगाए गए और साबित हुए आरोप के प्रति चौंकाने वाला असंगत था।

33. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा एम.पी. गंगाधरन और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य, [2006] 6 एस.सी.सी. 162 में देखा गया है, वैधानिक प्राधिकारी की ओर से तर्कसंगतता और निष्पक्षता के प्रश्न को आंकने के लिए संवैधानिक आवश्यकता पर प्रत्येक मामले के तथ्यात्मक ढांचे को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए। इसे किसी बंधे-बंधाए सूत्र में नहीं डाला जा सकता। इस पर लचीलेपन के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए। किसी कार्रवाई को रद्द करने से पहले, न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग के लिए एक मामला बनता है। न्यायालय ने टिप्पणी की कि हम कानून के इस विकास से बेखबर नहीं हैं कि 'वेडनेसबरी अतार्किकता' के सिद्धांत से

न्यायालय 'आनुपातिकता' के सिद्धांत की ओर झुक रही है। लेकिन इस प्रकृति के मामले में, आनुपातिकता का सिद्धांत उस उद्देश्य और लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए भी लागू किया जाना चाहिए जिसके लिए अधिनियम बनाया गया था।

34. इसके बाद 53 श्रमिकों की ओर से यह तर्क दिया गया कि यदि श्रमिकों की ओर से आपत्तिजनक कृत्य हड़ताल पर जाना था, तो सभी श्रमिकों के साथ समान और निष्पक्ष व्यवहार किया जाना चाहिए था। प्रबंधन द्वारा 134 कर्मचारियों को तुरंत बहाल करना और 53 कर्मचारियों को समान लाभ से वंचित करना सही नहीं था। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय उस पहलू पर विचार करने में सही था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वे (134 श्रमिक) काम पर शामिल हो गए थे और अपना काम फिर से शुरू कर दी थी, उन्हें मजदूरी का भुगतान भी किया गया था। चूंकि अन्य कर्मचारियों (53 श्रमिकों) ने काम शुरू नहीं किया था, इसलिए प्रबंधन द्वारा वेतन का भुगतान न करने की कार्रवाई में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। लेकिन यदि उन पर वेतनवृद्धि/वेतनवृद्धियों को रोकने के अन्य दंडात्मक परिणाम थोपे जाएंगे, तो यह कार्रवाई मनमानी और अनुचित होगी।

35. हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। हमारी सुविचारित राय में, 53 कर्मचारियों को उन 134 कर्मचारियों के समान स्थिति में नहीं कहा जा सकता जिन्होंने प्रबंधन के साथ सौहार्दपूर्ण समझौता किया था और 1972 में काम फिर से शुरू कर दिया था। यह स्थापित कानून है कि समान लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए और समान लोगों के साथ असमान व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। लेकिन, यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि असमान लोगों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जा सकता है। असमान लोगों के साथ समान व्यवहार भी संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त 'समान संरक्षण खंड' का उल्लंघन होगा। जहाँ तक 134 कर्मचारियों का संबंध है, उन्होंने समझौते

के नियमों और शर्तों को स्वीकार किया और काम फिर से शुरू किया। दूसरी ओर, 53 श्रमिकों ने समझौते को स्वीकार नहीं किया, हड़ताल जारी रखी जिसे अवैध और गैर-कानूनी घोषित किया गया था और विभागीय जांच में वे दोषी पाए गए। इसके अलावा, उन्होंने वफादार श्रमिकों को धमकी देकर गैर-कानूनी तरीकों का सहारा लिया। इसलिए, हमारे निर्णय में, 53 श्रमिकों को उस एक ही वर्ग का हिस्सा नहीं कहा जा सकता जिसमें 134 कर्मचारी रखे गए थे। इसलिए, 53 कर्मचारी उस समान लाभ का दावा नहीं कर सकते जो 134 कर्मचारियों को दिया गया था।

36. *भारत संघ बनाम परमानंद*, [1989] 2 एस.सी.सी. 177 में, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा इसी तरह की गलती की गई थी जिसे इस न्यायालय द्वारा सुधारा गया था। उस मामले में, एक कर्मचारी 'पी' पर दो अन्य कर्मचारियों के साथ फर्जी वेतन बिल और जाली पहचान पत्र बनाने का आरोप लगाया गया था। वे सभी दोषी पाए गए। दो कर्मचारियों पर एक छोटा दंड लगाया गया, लेकिन 'पी' को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया क्योंकि वह उस योजना का 'मास्टरमाइंड' था। 'पी' ने केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण का रुख किया। अधिकरण ने इस आधार पर दंड में संशोधन किया कि अन्य दो व्यक्तियों को छोटे दंड के साथ छोड़ दिया गया था लेकिन वही लाभ 'पी' को नहीं दिया गया था। इसलिए, उसके आवेदन को स्वीकार कर लिया गया और जुर्माने को अन्य दो कर्मचारियों के अनुरूप कम कर दिया गया। भारत संघ ने इस न्यायालय का रुख किया। यह आग्रह किया गया कि 'पी' का मामला अन्य कर्मचारियों के समान नहीं था क्योंकि वह मुख्य अपराधी था जो पूरी योजना तैयार करने के लिए जिम्मेदार था और धोखाधड़ी में शामिल था और अधिकरण अन्य दो कर्मचारियों को दिए गए लाभ को उस तक बढ़ाने में त्रुटि पर था। इस तर्क को स्वीकार करते हुए, इस न्यायालय ने अधिकरण द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया और प्राधिकारी द्वारा उसके खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेश को बहाल कर दिया।

37. परमानंद में प्रतिपादित सिद्धांत को हाल ही में ओबेटी (प्रा.) लिमिटेड बनाम मोहम्मद शफीक खान, [2005] 8 एस.सी.सी. 47 में दोहराया गया है। ओबेटी के मामले में, 'एम' ने कारखाने के श्रमिकों को हड़ताल पर जाने के लिए उकसाया था। उसने सामान ले जाने वाले वाहनों को कारखाने से बाहर नहीं जाने दिया और सह-कर्मियों को धमकी भी दी। तीन कर्मचारियों के खिलाफ कार्यवाही शुरू की गई। उनमें से दो ने बिना शर्त माफी मांगी और लिखित में आश्वासन दिया कि वे अपने कर्तव्यों का लगन से पालन करेंगे और हड़ताल में शामिल नहीं होंगे। इसलिए, उनके खिलाफ कार्यवाही बंद कर दी गई। हालाँकि, 'एम' अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों का मुकाबला करता रहा। उसे दोषी पाया गया और सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। अधिकरण ने इस कार्रवाई को बरकरार रखा। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने माना कि अधिकरण द्वारा 'एम' और अन्य दो श्रमिकों के बीच किया गया अंतर 'कृत्रिम' था और तदनुसार 'एम' को भी अन्य दो कर्मचारियों को दिए गए लाभ के समान राहत प्रदान कर दी।

38. उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए, उसके खिलाफ की गई कार्रवाई को बरकरार रखते हुए और अधिकरण के आदेश को बहाल करते हुए, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि अन्य दो कर्मचारियों के मामले अलग धरातल पर थे और उच्च न्यायालय उस विशिष्ट विशेषता को समझने में विफल रहा कि जहाँ दो कर्मचारियों ने बिना शर्त माफी मांगी थी, वहीं 'एम' अपनी कार्रवाई को सही ठहराता रहा। इसलिए, उच्च न्यायालय का आदेश स्पष्ट रूप से असंभारणीय नहीं था।

39. इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि 53 कर्मचारियों के मामले 134 कर्मचारियों के समान थे और 53 कर्मचारी भी उसी समान लाभ का दावा करने के हकदार थे जो प्रबंधन द्वारा 134 कर्मचारियों को दिया गया था।

40. उपरोक्त चर्चा का शुद्ध परिणाम यह होगा कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए और उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा संशोधित निर्णय को अपास्त किया जाना चाहिए। हालाँकि, संघ के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे संज्ञान में कुछ घटनाक्रम लाए गए। यह बताया गया कि यद्यपि विभागीय कार्यवाही में श्रमिकों को दोषी पाया गया था, लेकिन उनकी सेवाएँ समाप्त नहीं की गई थीं। उन्हें उस बीच की अवधि के लिए मजदूरी नहीं दी गई थी जिस दौरान उन्होंने काम नहीं किया था, लेकिन उन्हें काम पर आने की अनुमति दी गई थी और वास्तव में उन्होंने वर्ष 1973 में काम फिर से शुरू कर दिया था। यह तीन दशक से भी अधिक समय पहले किया गया था। श्रम न्यायालय ने उन्हें कोई राहत नहीं दी थी। हालाँकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उनकी याचिका स्वीकार की और कुछ राहत दी, लेकिन खंडपीठ द्वारा आदेश में संशोधन किया गया था।

53 कर्मचारी अब अपने कार्यों का निष्पादन कर रहे हैं और अपीलकर्ता-बैंक की संतुष्टि के अनुसार ईमानदारी, लगन से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। इसके बाद उनके खिलाफ कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई है। 'औद्योगिक शांति' बहाल हो चुकी है। यदि इस स्तर पर, इतने लंबे समय के बाद इस न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित किया जाता है, तो यह बैंक के कामकाज को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि बैंक की शिकायत का निवारण हो गया है और इस न्यायालय द्वारा सही कानूनी स्थिति घोषित कर दी गई है। इसलिए, न्यायालय मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दी गई सीमित राहत में हस्तक्षेप न करे।

41. हमारे विचार में, यह दलील सुदृढ़ है और स्वीकार किए जाने योग्य है। इसलिए, भले ही हमारा यह विचार है कि विद्वान एकल न्यायाधीश लाभ देने में सही नहीं थे और खंडपीठ द्वारा पारित आदेश भी उचित नहीं है, फिर भी खंडपीठ द्वारा पारित अंतिम आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा। इसलिए, इस बिंदु पर कानून की घोषणा करते हुए, हम न्याय को दया के

साथ संतुलित करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण शक्ति के प्रयोग में, हम मानते हैं कि उन 53 श्रमिकों को वंचित करना उचित नहीं होगा जिन्हें उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश के तहत सीमित लाभ प्राप्त हुए हैं।

42. पूर्वगामी कारणों से, हम मानते हैं कि न तो विद्वान एकल न्यायाधीश और न ही उच्च न्यायालय की खंडपीठ प्रबंधन द्वारा की गई कार्रवाई और श्रम न्यायालय, कोयंबटूर द्वारा पारित पंचाट में हस्तक्षेप करने में न्यायसंगत थे, जो पूरी तरह से कानून के अनुरूप था। मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में और संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति के प्रयोग में, हम उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 3 नवंबर, 2004 को रिट अपील संख्या 45/2001 में पारित अंतिम आदेश में कोई हस्तक्षेप नहीं करते हैं।

43. अपील तदनुसार उपरोक्त शर्तों के साथ निस्तारित की जाती है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

एस.के.एस.

अपीलें निस्तारित।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।